पूर्वभव परिचय

घनाक्षरी छन्द

आदि जै वर्मा दूजै, महाबल भूप तीजै, स्वर्ग ईशान ललितांग देव भयो है ।
चौथे बज्रजंघ राय, पांचवें युगल देह, सम्यक हो दूजे देव लोक फिर गयो है ।
सातवें सुविधि देव, आठवें अच्युत इन्द्र, नौमें भोनरिन्द्र बज्रनाभि नाम पायो है ।
दशमें अहमिन्द्र जान, ग्यारमें ऋषभभान, नाभिवंश भूधरकेमाथ जन्म लियो है ।

भरतैरावयतो वृध्दिहासौ षट्समयाभ्यामुस्तिर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।

भगवान उमास्वामी ने कहा है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल के द्वारा क्रमसे वृध्दि और हानि होती रहती है । जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमाकी कलाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है । उसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में लोगों की कला , विद्या, आयु आदि वस्तुएं बढ़ती जाती है । भरत और ऐरावत क्षेत्र मे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की नांई उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का परिवर्तन होता रहाता है । उनकेछह छह भेद हैं । १ अति दु:षमा २ दु:षमा ३ सुषमा दु:षमा ४ दुषमा ५ सुषमा ६ सुषमा सुषमा । यह क्रम उत्सर्पिणीका है । अवसर्पिणीका क्रम से इस उल्टा होता है । ये दोंनों मिल कर कल्पकाल कहलाते- हैं जिसका प्रमाण बीस कोड़ा कोड़ी सागर है ।

अभी इस जम्बूद्वीप केभरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल का संसार हो रहा है । उस केसुषमा सुषमा नामक पहले भेद का समय चार कोड़ा कोड़ी सागर है । उस केप्रारम्भ में मनुष्य उत्तर कुरु केमनुष्यों के समान होते थे । वहां पर जीवों की आयु तीन पल्यकी होती है, शरीर की ऊंचाई छह हजार धनुष की होती है । वहाकेलोंगों का रंग साने-सा चमकीला होता है । और वे तीन तीन दिन बाद थोड़ा सा आहार लेते हैं । फिर क्रम क्रमसे हानि होने पर दूसरा सुषमा काल आता है जिसका प्रमाण तीन कोड़ा कोड़ी सागर है । उसकेप्रारम्भ में मनुष्य हरिवर्ष क्षेत्र केमनुष्यों की भांति होते हैं उनकी आयु दो पल्य की और शरीर की ऊंचाई चार हजार धनुष की होती है । वे दो दिन बाद थोड़ा-सा आहार लेते हैं उनका शरीर शंख केसमान श्वेत वर्ण का होता है । फिर क्रमसे हानि होने पर तीसरा सुषमा दुषमा काल आता है जिसका प्रमाण दो कोड़ा कोड़ी सागर है । उसकेप्रारम्भमें मनुष्य हैमवत क्षेत्रकेमनुष्यों की भांति होते हैं वे एक पल्यतक जीवित रहते हैं । उनका शरीर दो हजार धनुष ऊंचा होता है । वे एक दिन बाद थोड़ा आहार लेते हे और उनकेशरीरका रंग नील कमलकेसमान नील होता है । फिर क्रमसे हानि होनेपर चौथा दु:षमा सुषमा काल आता है जिसका प्रमाण व्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ा कोड़ी सागर है । उसकेप्रारम्भ कालमें मनुष्य विदेह क्षेत्रकेमनुष्योंकेसदृश्य होते हैं । उनकेशरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष की और आयु एक करोड़ वर्ष की होती है । वे दिन में एक बार आहार करते हैं । फिर क्रम से हानि होनेपर पांचवां दु:षमा काल आता है जिसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष का है । इस केप्रारम्भ में

मनुष्यो की ऊंचाई पहले से बहुत कम हो जाती है यहां तक कि साढ़े तीन हाथ ही रहा जाती है ; आयु भी बहुत कम हो जाती है । इस समय के लोग दिन में कई बार खाने लगते है । फिर क्रमसे परिवर्तन होने पर दु:षमा दु:षमा नाम का छठवां काल आता है जिस का प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष का है । छठवें काल मे लोगों की अहगाहना शरीर की ऊंचाई एक हाथ की रहा जाती है आयु बिलकुल थोड़ी रह जाती है और शरीर भी कुरुप होने लगते हैं । इसी तरह उत्सर्पिणी के- भी छह भेद होते हैं और उनका प्रमाण भी दश कोड़ा कोड़ी सागरका होता है परन्तु उनका क्रम अवसर्पिणी के क्रम से विपरीत होता है । जब यहां अवसर्पिणीका क्रम पूरा हो चुकेगा तब उत्सर्पिणी का संचार होगा ।

हमें जिस समयका वर्णन करना है उस समय यहां अवसर्पिणी का तीसरा सुषमा दु:षामा काल चल रहा था । तीसरे कालमें यहां जघन्य भोग भूमि जैसी रचना थी । कल्पवृक्षों के द्वारा ही मनुष्यों की आवश्यकतांए पूर्ण हुआ करती थी । स्त्री और पुरुष साथ में ही उत्पन्न होते थे और वे सात सप्ताह में पूर्ण जवान हो जाते थे । उस समय कोई किसी बात के लिये दु:खी नहीं था सभी मनुष्य एक समान वैभव वाले थे , कोई किसी के आश्रित नहीं था, सभी स्वतन्त्र थे । पर ज्यों ज्यों तीसरा काल बीतता गया त्यों त्यों ऊपर कही हुई बातों में न्यूनता होती गई । यहांतक कि तीसरे काल के अन्तिम पल्य में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुके थे ।

स्त्री पुरषों का एक साथ उत्पन्न होना बन्द हो गया । पहले बालक बालिकाओं के उत्पन्न होते ही उनके माता पिता की मृत्यु हो जाती थी पर जब वह प्रथा धीरे-धीरे बन्द होने लगी, कल्पवृक्षों की कांति फीकी पड़ गयी और फिर धीरे-धीरे वे नष्ट भी हो गये । बिना वपन किये हुए अनाज पैदा होने लगा , सिंह व्याघ्र आदि जानवर उपद्रव करने लगे । इन सब विचित्र परिवर्तनों से जब जनता घबराने लगी तब क्रमसे इस भारत वर्ष में प्रतिश्रुति १ सन्मति २ क्षेमंधर ४ सीमंकर ५ सीमंधर ६ विमल वाहन ७ चक्षुष्मान ८ यशस्वी ९ अभिचन्द्र १० चन्द्राभ ११ मरु देव १२ प्रसेन जित १३ और नाभिराज १४ ये चौदह महापुरुष हुए । इन नहापुरुषों ने अपने बुद्धि बल से जनताका संरक्षण किया था इसलिये लोग इन्हें कुलकर कहते थे । यहांपर चौदहवें कुलकर नाभिराज का कुछ वर्णन करना अनावश्यक नहीं होगा क्योंकी कथानायक भगवान का इनके साथ विशेष सम्बन्ध रहा है ।

यहां जब भोगभूमि की रचना मिट चुकी थी और कर्मभूमि की रचना प्रारम्भ हो रही थी तब अयोध्या नगरी में अन्तिम कुलकर नाभिराज का जन्म हुआ था । ये स्वभाव से ही परोपकारी, मृदुभाषी और प्रतिभाशाली पुरुष थे । इनकी आयु एक करोड़ पूर्वकी थी और शरीर की ऊंचाई पांच सौ पच्चीस धनुष की थी । इनके मस्तकपर बन्धा हुआ सोने का मुकुट बड़ा ही भला मालूम होता था । इनके समय में उत्पन्न होते समय बालक की नाभि में नाल दिखाई देने लगी थी । महाराज नाभिराज ने उस नाल के काटने का उपाय बतलाया था इसलिये उनका नाभि सार्थक नाम प्रसिध्द हुआ था । इन्हीं के समय में आकाश में श्यामल मेघ दिखने लगे थे और उनमें इन्द्रधनुष की विचित्र आभा छिटकने लगी थी । कभी

उन मेघों में मृदंग- केशब्द जैसा सुन्दर शब्द सुनाई पड़ता और कभी बिजली चमकती थी । वर्षा होने से पृथ्वी की अपूर्व शोभा हो गई थी । कहीं सुन्दर निर्झर कलरव करते हुए बहने लगे थे, कहीं पहाड़ो की गुफाओं से इठलाती हुई नदियां बहने लगी थीं , कहीं मेघों की गर्जना सुनकर बनों में मयूर नाचने लगे- थे , आकाश में सफेद बगुले उड़ने लगे थे और समस्त पृथ्वी तप हरी हरी घास उत्पन्न हो- गई थी जिससे ऐसा मालूम पड़ता था मानो पृथ्वी हरी साड़ी पहिनकर नवीन अभ्यागत पावस ऋतु का स्वागत करने केलिये ही उद्यत हुई हो । उस वर्षा से खेतों में अपने आप तरह तरह केधान्य केअंकूर उत्पन्न होकर योग्य फल देने वाले हो गये थे । इस तरह उस समय यद्यपि भोग उपभोग की समस्त सामग्री मौजूद थी परन्तु उस समय की प्रजा उसे काम में लाना नहीं जानती थी इसलिये वह उसे देख कर भ्रम में पड़ गई थी । अबतक भोगभूमि बिलकुल मिट चुकी थी, और कर्म युग का प्रारभ्भ हो गया था परन्तु लोगकर्म करना जानते नहीं थे- इसलिये वे भूख प्याससे दु:खी होने लगे ।

एक दिन चिन्ता से आकुल हुए समस्त प्राणी महाराज नाभिराज केपास पहुचे और उनसे दीनता पूर्वक प्रार्थना करने लगे । महाराज ! पाप केउदय से अब मनचाहे फल देनेवाले नष्ट हो गये है । इसलिये हम सब भूख प्याससे व्याकुल हो रहे हैं, कृपाकर जीवित रहनेका कुछ उपाय बतलाइये । नाथ ! देखिये कल्पवृक्ष नष्ट उपाय बतलाइये । नाथ ! देखिय कल्पवृक्षों केबदले ये अनेक तरहकेवृक्ष उत्पन्न हुए है जो फल केभारसे नीचे झुक रहे है । इनकेफल खानेसे हम लोग मर तो न जावेंगे और ये खेतोंमे कई तरह केछोटे छोटे पौधे लगे हुए हैं जो बालों केभार से झुकने केकारण ऐसे मालूम होते है मानो अपनी जननी महीदेवी को नमस्कार ही कर रहे हों । कहिए ये सब किसलिए पैदा हुए हैं ? महाराज ! आप हम सब केरक्षक हैं, बुध्दिमान है. इसलिए इस संकट केसमय हमारी रक्षा कीजिये । प्रजा केऐसे दीनता भरे वचन सुनकर नाभिराज ने-मधुर वचनों से सबको सन्तोष दिलाया और युग केपरिवर्तन का हाल बताते हुए कही कि भाइयों ! कल्पवृक्षों केनष्ट हो जाने पर भी ये साधारण वृक्ष तुम्हारा वैसा ही उपकार करेंगे जैसा कि पहले कल्पवृक्ष करते थे । देखो, ये खेतों में अनेक तरह केअनाज पैदा हुए है इनकेखाने-से आप लोगों की भूख शान्त हो जायेगी और इन सुन्दर कुए बावडी, निर्झर आदि का पानी पीनेसे तुम्हारी प्यास मिट जायेगी । इधर देखो, ये लम्बे गन्ने केपेड़ दिख रहे हैं जो बहुत ही मीठे हों । इन्हें दांतों अथवा यन्त्र से पेलकर इनका रस पीना चाहिये । और इस और देखो, इन गाय भैसों केस्तनों से सफेद सफेद मीठ दूध झर रहा है इसे पीने से शरीर पुष्ट होता है और भूख मिट जाता है । इस तरह दयालु महाराज नाभिराज ने उस दिन प्रजा को जीवित रहने के सब उपाय बतलायें तथा हाथी के गण्डस्थल पर थाली आदि कई तरह के मिट्टी केबर्तन बना कर दिये एवं आगे इसी तरह का बनाने का उपदेश दिया । नाभिराज के मुख से यह सब सुनकर प्रजाजन बहुत ही प्रसन्न हुए और उनका द्वारा बतलाये हुए उपायों को अमल में लाकर सुख सें रहने लगे ।

पहले लोग बहुत ही भद्र परिणामी होते थे इसलिये उनसे किसी प्रकार का अपराध नहीं होते थे । पर ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों लोगों के परिणाम कुटिल होते गये और वे- अपराध करने लगे इसलिये नाभिराज ने और पहले कुलकरों ने अपराधी मनुष्यों दण्ड देने- के लिये दण्ड-विधान भी चलाया था । सुनिये उनका दण्ड विधान ! प्रारम्भ के पांच कुलकारों ने अपराधी मनुष्यों को ङहाङ इस तरह शोक प्रकट करने रुप दण्ड देना शुरु किया था । उन के बाद पांच कुलकरों ने ङहाङ शोक प्रकट करने तथा ङमॉङ अब ऐसा नहीं करना ये दो दण्ड चलाये थे और उनसे पीछे के कुलकरों ने ङहाङ ङमॉङ ङधिक्ङ ये तीन प्रकार के दण्ड चलाये थे । नाभिराज की स्त्री का नाम मरु देवी था । मरुदेवी के उत्कर्ष के विषय में उस के नख-शिखका वर्णन न कर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसके समान सुन्दरी और सदारचारिणी स्त्री पृथ्वीतल पर न हुई है , न है, न होगी । राजा नाभिराज की राजधानी अयोध्यापूरी थी । राजदम्पति अनेक तरह के सुख भोगते हुए बड़े आनन्द से वहां रहते थे और नये नये उपायोसे प्रजा का पालन करते - थे । अब यहां पर यह प्रकट कर देना अनुचित न होगा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती जो कि सर्वार्थ सिध्दि में अहमिन्द्र हुए थे कुछ समय बाद वहा से चयकर इन्हीं राजदम्पतिके पुत्र होंगे और वृषभनाथ नाम से प्रसिध्द होंगे । ये वृषभनाथ ही इस युग के प्रथम तीर्थकार कहलावेंगे ।

सर्वार्थ सिद्धि में ज्यों ज्यों वज्रनाभि अहमिन्द्र की आयु कम होती जाती थी त्यों त्यों तीनों लोको में आनन्द बढ़ता जाता था । यहां तक कि, वहां उनकी आयु सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई तब इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने राजधानी अयोध्या के समीप ही एक दूसरी अयोध्या नगरी बनाई । वह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी । नगरी के बाहर चारों ओर अगाध जल से भरी हुई सुन्दर परिखा थी जिसमें कई रंगों के कमल फूले हुए थे ओर उन कमलों की पराग से उस परिखा का पानी पिघले हुए सुर्वण की तरह जान पड़ता था । उसके बाद सुर्वणमय कोट बना हुआ था । उस कोट की शिखरें बहुत ऊंची थीं । कोट के चारों ओर चार गोपुर बने हुए थे । जिनकी गगनचुम्बी शिखरो पर मणिमय कलशों ऐसे मालूम होते- थे मानो उदयाचल की शिखरों पर सूर्य के बिम्ब ही विराजमान हों । उस नगरी में जगह जगह विशाल जिन मन्दिर बने हुए थें जिन मे जिनेन्द्र देव की रत्नमयी प्रतिमाएं पधराई गई थी । कहीं स्वच्छ जल से भरे हुए तालाब दिखाई देते थे । उन तालाबों में कमल फूल रहे थे और उनपर मधु के पीने से मत्त हुए भौंरे मनोहर शब्द करते थे । कहीं अगाध जल से भरी हुई वापिकाएं- नजर आती थीं जिनके रत्न खचित किनारों पर हंस, सारस आदि पक्षी क्रीड़ा किया करते थे । कहीं आम, नींबू , अमरुद, अनार आदि के पेड़ो से विशोभित बड़े बड़े बगीचे - बनाये गये थे । जिनमें हीरा मोती पन्ना आदि माणियों के ढेर लगाये जाते थे । कहीं सेठ साहुकारों के बड़े बड़े महल बने हुए थे जिनकी शिखरों पर कई तरह रत्न जड़े हुए थे । किसी सुन्दर जगह में राजभवन बने हुये थे जिनकी ऊंची शिखरें आकाश के अन्तस्थल को भेदती हूअी आगे चली गई थी । और कहीं निर्बांध स्थानों में विस्तृत विद्यालय बनाये गये थे । जिन की दीवालों पर कई प्रकार के शिक्षा प्रद चित्र टंग हुये थे ।

कविवर अर्हद्दास ने ठीक लिखा है कि जिसकेबनाने में इन्द्र सूत्रधार हो और देव लोग स्वयं कार्य करने वाले हों उस अयोध्या नगरी की वर्णन कहांतक किया जा सकता हैं ? सचमुच उस नवनिर्मित अयोध्या के सामने इन्द्रकी अमरावती बहुत ही फीकी मालूम होती थी ।

किसी दिन शुभमुहर्त में सौधर्म स्वर्ग के इन्द्रने सब देवों के साथ आकर उस नवीन नगरी में महाराज नाभिराज और मरु देवी का राज्याभिषेक कर उन्हें राजभवन में ठहराया । उसी दिन सब अयोध्या वासियों को भी नवीन अयोध्या में प्रवेश कराया जिससे उसकी शोभा बहुत ही विचित्र हो गयी थी । इसकेबाद वे देव लोग कई तरह केकौतुक दिखलाकर अपने स्थानोंपर चले गये ।

जबतक मनुष्य भोग लालसाओं मे ं लीन रहते है तबतक उनकेहृदय में धर्म की वासना दृढ़ नहीं होने पाती पर जैसे जैसे भोग लालसाएं घटती जाती हैं वैसे ही उनमें धर्म की वासना दृढं होती जाती हैं । इस भारत वसुन्धरा पर जबसे कर्मयुग का प्रारम्भ हुआ तब से लोगों केहृदय भोग लालसाओं से बहुत कुछ विरक्त हो चुकेथे इसलिये वह समय उनकेहृदयों में धर्म का बीज वपन करने केलिये सर्वथा योग्य था । उस समय संसार को ऐसे देवदूत की कर्तव्यका ज्ञान करावे और उनकेसुकोमल हृदय क्षेत्रों में धर्म कल्पवृक्ष केबीज वपन करे । वह महान् कार्य कीसी साधारण मनुष्यसे नहीं हो सकता था, उसकेलिये तो किसी ऐसे महात्माकीा आवश्यकता थी जिसका व्यक्तित्व बहुत ही बढ़ा चढ़ा हो । जिसका हृदय अत्यन्त निर्मल और उदार हो । उस समय वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव जो कि सर्वार्थसिध्दिमें अहमिन्द्र पदपर आसीन था इस महान् कार्य केलिये उद्यत हुआ । देवताओं ने उसका सहर्ष अभिवादन किया । यद्यपि उसे अभी भारत-भूपर आने केलिये कुछ समय बाकी था तथापि उसकेपुण्य परमाणु सब ओर फैल गये थे ।

सबसे पहले देवों ने उस महात्मा केस्वागत केलिये नव्य नगरीका निर्माण किया और फिर + ६६३ ु उसमें प्रति दिन दिनमें तीन तीन बार करोंड़ों रत्नोंकी वर्षा की थी । एक दिन महारानी मरुदेव गंगा जल केसामने स्वच्छ वस्त्र से शोभित शय्यापर शयन कर रही थी । उस समय सरयू नदी की तरल तरंगों के आलिंगन से शीतल हुई हवा धीरे धीरे बह रही थी , इसलिये वह सुखकी नींद सो रही थी । जब रात पूर्ण हुआ चाहती थी तब उसने आकाश में नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे । १ऐरावत हाथी , २ सफेद बैल, ३गरजता हुआ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएं, ६ चन्द्र मण्डल, ७ सूर्य बिम्ब, ८ सुर्वणके दो कलश, ९ तालाबमें खेलली हुई दो मछलियां , १० निर्मल जस से भरा हुआ सरोवर, ११ लहराता हुआ समुद्र, १२ रत्नोंसे जड़ा हुआ सिंहासन, १३ देवोंका विमान, १४ नागेन्द्र भवन, १५ रत्नराशि और १६ अग्नि । स्वप्न देखने केबाद उसने अपनें मुंहमें प्रवेश करते हुए कुन्द पुष्प केसमान श्वेत वर्णवाला एक बैल देखा । इतने में रात पूर्ण हो गई पूर्व दिशा में लाली छा गई और राज-मन्दीर में बाजों की मगंल ध्वनि होने लगी । बाजों की आवाज तथा बन्दीजनों केस्तुति भरे वचनों से उसकी (मरुदेवी की) नींद खुल गई । वह पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई शय्यासे उठी तो . अनोखे स्वप्नों का ख्यालकर आश्चर्य सागर में

विमग्म हो गई । जब उसे बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी स्वप्नों के फल का पता न चला तब वह शीघ्र ही नहां धोकर तैयार हुई और बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिनकर सभा मण्डपकी ओर गई । महाराज नाभिराज ने ह्रदयवल्लभा मरुदेवी का यथोचित सत्कार कर उसे योग्य आसनपर बैठाया और मधुर बचनों से कुशल प्रश्न पूछ चुकने के बाद उसके राजसभा में आने का कारण पूछा । मरुदेवी ने विनयपूर्वक रात में देखे हुए स्वप्न राजासे- कहे और उनके फल जानने की इच्छा प्रकट की । नाभिराज को अवधिज्ञान था इसलिये वे सुनते- समय ही स्वप्नों का फल जान गये थे । जब मरुदेवी अपनी जिज्ञासा प्रकट कर चुप हो रही तब महाराज नाभिराज बोले । बोलते समय उनके दांतों की सफेद किरणे- मरुदेवीके वक्षस्थल पर पड़ रही थी जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो महाराज अपनी प्रियतमाको मोतियों का हार ही पहिना रहे हों ।

देवि ! ऐरावत हाथी के देखने से तुम्हारे अत्यन्त उत्कृष्ट पुत्र होगा, बैलके देखने से वह पुत्र समस्त संसार का अधिपति होगा, सिंह के देखने से अत्यन्त पराक्रमी होगा, लक्ष्मी के देके से अत्यन्त विभवशाली होगा,`दो मालाओं के देखने से धर्म तीर्थ का कर्ता होगा, पूर्ण चन्द्रमा के देखने से समस्त प्राणियों को आनन्द देने वाला होगा , सूर्य को देखने से तेजस्वी होगा , सोने के कलश देखने से निधियों का स्वामी होगा , मछलियों के देखने से अनन्त सुखी और सरोवर के देखने से उत्तम लक्षंणों से भूषित होगा , समुद्र के देखने से सर्वदर्शी और सिंहासन के देखने से स्थिर साम्राज्यवान् होगा , देव विमान देखने से वह स्वर्ग से आवेगा, नागेंन्द्र का भवन देखने से अवधिज्ञानी , रत्नोंकी राशि देखने से गुणों की खानि और निर्धूम अग्नि के देखने- से वह कर्म रुपी ईधन को जलानेवाला होगा । तथा स्वप्न देखने के बाद जो तुमने मुह में प्रवेश करते हुए सफेद बैल को देखा है उससे मालूम होता है कि तुम्हारे गर्भ में किसी देवने-अवतार लिया है । छ

यहांपर राज नाभिराज मरु देवी के लिये स्वप्नों का फल बतला रहे थे वहां देवों के अचानक आसन कम्पायमान हुए जिससे उन्हें भगवान् वृषभनाथ के् गर्भारोहण का निश्चय हो गया । इन्द्र की आज्ञानुसार दिक्कुमारियां तथा श्री, ऱ्ही, घृति, कीर्ति, बुध्दी, लक्ष्मी आदि देवियां जिनमाता महारानी मरुदेव की सेवा के लिये आ गई । इन्द्र आदि समस्त देवों ने आकर अयोध्यापुरी में खूब उत्सव किया और वस्त्र आभूषण आदि से राजा नाभिराज और मरुदेव का खूब सत्कार किया । जो रत्नों की धारा गर्भाधान में छह माह पहले से बरसती थी वह गर्भ के दिनों मे भी वैसी बरसती रही । इस तरह आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र ने सर्वार्थ सिध्दी से चयकर महादेवी के गर्भ मे स्थान पाया । जब भगवान् गर्भ में आये थे तब तीसरे सुषमा दु:षमा कालके चौरासी लाख पूर्व तथा चार वर्ष साढ़े पांच माह बाकी थे । मरुदेव की सेवा के लिये जो दिक्कुमारियां तथा श्री, ऱ्ही आदि देवियां आई थी उन्होंने सबसे पहले स्वर्ग लोक से आई हुई दिव्य औषधियों से उसका गर्भ शोधन किया और फिर निरन्तर गर्भ की रक्षा तथा उसके पोषण में दत्तचित्त रहने लगी । वे देवियां मरुदेवी की तरह तरह की सेवा करने लगी

कोई शरीर में तैल का मर्दन करती थी, कोई उबटन लगाती थी, कोई नहलाती थी, कोई चन्दन कपूर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप लगाती थी, कोई बालों का सम्भालकर उन्हें सुगन्धित फुलों से सजाती थी , कोई अमृत के समान अत्यन्त मधुर भोजन कराती थी, कोई शिरपर छत्र लगाती थी, कोई उत्तम ताम्बूल के बीड़े समर्पण करती थी कोई रत्नों के चर्ण से चौक पूरती थी, कोई तलवार लेकर पहरा देती थी , कोई आंगन बुहारती थी और कोई मनोहर कविताओं, कहानियों, पहेलियों और समस्याओं के द्वारा उनका चित्त अनुरंजित करती थी । इस तरह देवियों के साथ नृत्य गीत आदि विनोदों के व्दारा मरू देवी का समय सुख से बीतता था । उस समय विचित्र बात यह थी कि गर्भ के दिन बीत जाते थे पर उनके शरीर में गर्भ के कुछ भी चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे । न पेट बढ़ा था, न मुख की कान्ति फीकी पड़ी थी, न आंखों स्तनों में भी कुछ परिवर्तन हुआ था ।

जब धीरे धीरे गर्भका समय पूरा हो गया तब चैत्र कृष्ण नवमी के दिन उत्तम लग्न में प्रात:काल के समय मरुदेवी ने पुत्र-रत्न प्रसूत किया । उस समय वह पुत्र सूर्य के समान मालूम होता था, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य उदयाचल के द्वारा प्राची दिशा में प्रकट होता है ुसी प्रकार वह भी महाराज नाभिराज के द्वारा महारानी मरुदेवी में प्रकट हुआ था । जिस तरह सूर्य किरणों से प्रकाशमान होता है तथा अन्धकार नष्ट करता है उसी तरह वह भी मति, श्रुति, अवधि ज्ञानरुपी-किरणों से चमक रहा था और अज्ञान-तिमर को नष्ट करता था । बालक रुपी बाल सूर्य को देखकर देवाङ्र.नाओ के नयन-कमल विकसित हो गये थे और उनसे हर्षाश्रु रुपी मकरन्द झरने लगा था । बालक की अनुपम प्रभा से समस्त प्रसूति-गृह अन्धकार रहित हो गया था इसलिये देवियों ने जो दीपक जलाये थे वे सिर्फ मंगल के लिये ही थे । उस समय तीनों तलोकों में उल्लास मच गया था । क्षण एक के लिये नारकी भी सुखी हो गये थे । दिशाएं निर्मल हो गयी थीं, आकाश निर्मेघ हो गया था। नदी तालाब आदिका पानी स्वच्छ हो गया था । सूर्यकी कान्ति फीकी पड गई थी । मन्द सुगन्धित पवन बह रहा था । बन में एक साथ छहों ऋतुओं की शोभा प्रकट हो गई थी । घर घर पर उत्सव मनाये जा रहे थे , जगह-जगह पर लय और तालके साथ सुन्दर संगीत हो रहे थे ,मृदंग, वीणा आदि बाजों की रसीली आवाज सारे गगन में गूंज रही थी, मकानों की शिखरों पर कई रंगकी पताकाए फहराई गई थी, सड़कोंपर सुगन्धित जल सींचकर चन्दन छिड़का गया था और उत्तम फुल बिखेरे थे और आकाश से तरह तरहके रत्न तथा मन्दार, सुन्दर, नमेरु, परिजात, सन्तान आदि कल्पवृक्षों से फल बरस रहे थे । इन सबसे अयोध्यापुरी की शोभा बड़ी ही विचित्र मालूम होती थी । उस समयवहां ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जिसका ह्रदय तीर्थकर बालक की उत्पत्ति सुनकर आनन्द से न उमड़ रहा हो । देव, दानव,मृग, मानव आदि सबी प्राणियों के ह्रदयों में आनन्द सागर लहरा रहा था ।

बालक के पुण्य प्रतापसे भवनवासी देवोंके भवानों में बिना बजाये ही शंख बजने लगे - थे । व्यन्तरों के भवनों में भेरी का शब्द होने लगा था । ज्योतिषियों के विमान सिंहनाद से प्रतिध्वनित हो उठे थे और कल्पवासी देवोंके विमानों मे घण्टाओंका सुन्दर शब्द होने लगा था । जगत्गुरु जिनेन्द्र देव के

सामने किसी दूसरे का राज्य सुदृढ़ सिंहासन नहीं रह सकता , मानो यह प्रकट करते हुए ही देवों के आसन हिल गये थे । जब इन्द्र हजार आंखों से भी आसन हिलने कारण न जान सका तब उसने अवधिज्ञान-रुपी लोचन खोला जिससे वह शीघ्र ही समझ गया कि अयोध्यापुरी मे श्री महाराज नाभिराज के घर प्रथम तीर्थकर का जन्म हुआ है । यह जानकर इन्द्रने शीघ्रता पूर्वक सिंहासन से उठ अयोध्यापुरी की ओर सात कदम जाकर तीर्थकर बालक को परोक्ष नमस्कार किया । फिर भगवान् के जन्माभिषेक महोत्सव में शामिल होने के लिये प्रस्थान भेरी बजवाई । भेरी का गम्भीर शब्द, चिरकाल से सोये हुए समीचीन धर्म को जगाते हुए के समान तीनों लोकों में फैल गया था, प्रस्थान भेरीका आवाज सुन समस्त देव सेनाएं अपने अपने आवासों से निकरलकर स्वर्ग के गोपुर द्वार पर इन्द्र की प्रतीक्षा करने लगीं । सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भी इन्द्राणी के साथ ऐरावत हाथीपर बैठकर समस्त देव सेनाओं के साथ साथ अयोध्यापुरी की ओर चला । रास्तें में ्नेक सुर नर्तकियां अभिनय करती जाती थी । सरस्वती वीणा बजाती थी , गन्धर्व गाते थे और भरतचार्य नृत्य की व्यवस्था करते जाते थे । उस समय परस्पर के आघातसे टूट नीचे गिरते हुए माला के मणि ऐसे मालूम पड़ते थे मानो ऐरावत आदि हाथियों के पाद संचार से चूर्ण हुए नक्षत्रों के टुकडे ही हों । धीरे धीरे- वह देव सेना आकाश में स्थित हो इन्द्र इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख जनम नाभिराज के भवनपर पहुंचे ओर दीन प्रदक्षिणाएं देकर उसके भीतर प्रिवष्ट हुए । वहां राजमन्दिर की अनूठी शोभा देखकर इन्द्र बहुत हर्षित हुआ । जिन बालक को लाने के लिए इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूति-गृह में भेजा और स्वयं अंगणमें खड़ा रहा । वहां जब उसकी दृष्टी माता के पास शयम करते हुए जिन बालकपर पड़ी तब उसका ह्रदय आनन्द से भर गया ।

इन्द्राणी ने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर वह मरुदेवी का महामाया नींद से अचेतकर उसके समीप में एक माया -निर्मित बालक सुलाकर जिन बालक को बाहर ले आई । उस समय उनके आगे दिक्कुमारी देवियां अष्ट मंगल लिये हुए चल रही थी, कोई जय जय शब्द कर रही थी ओर कोई मनोहर मंगल गीत गा रही थी । इन्द्राणी ने ले जाकर जिन-बालक न्द्रि के लिये सौंप दिया । कहते हैं कि इन्द्र दो आखों से बालक का सौंदर्य बना ली थीं । देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ था इस लिए उसने उसी समय विक्रिया से हजार आंखे बना ली थी । पर कौन कह सकता है कि वह हजार आंखों से भी उन्हें देखकर संतुष्ट हुआ होगा ? उस समय देव -सेना में जय जयकार शब्दके सिवाय और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था । सौधर्म इन्द्र ने उन्हें ऐरावत हाथीपर बैठाया और स्वयं अपने होथों वा गोद से साधे रहा । उस समय बालक वृषभानाथ के सिरपर ऐशान स्वर्ग का इन्द्र धवल छत्र लगाये हुए था । सनत्कुमार ओर महेन्द्र स्वर्ग केइन्द्र दोनों चमर ढोर रहे ते तथा अवशिष्ट इन्द्र और देव मेरुपर्वत की और चली और धीरे धीरे निन्यानवे हजार योजन ऊंचे जाकर मेरु पर्वत पर पहुंच गई । मेरु पर्वत की शिखर पर जो पाण्डुक बन है उस में देव सेना को ठहराकर देवराज इन्द्र उस बन के ईशान्य की और गया । वहां उसकी दृष्टी शिलापर पडी पाण्डुक -शिला स्फटिक मणियों से बनी हुई थी , देखने- अर्धचन्द्र-सी

मालूम होती थी ष पचास योजन चौड़ी सो योजन लम्बी और आठ योजन ऊंची थी । इस केबीच भाग में एक रत्न - खचित सोने का सिंहासन रक्खा खा और उस सिंहासन केदोनों ओर दो सिंहासन और रक्खे हुए ते । इन्द्रने वहां पर वस्त्रांग जाति केकल्पवृक्षो से प्राप्त हुए वस्त्रों से एक सुन्दर मण्डप तैयार करवा कर उसे अनेक तरह केरत्न और जित्रों से सजवाया ता । इसकेअनन्तर इन्द्रने जिन बालक को ऐरावत हाथी के गण्डस्थल से उतारक बीच केसिंहासन पर विराजमान कर दिया तथा बगल में दोनों आसनों पर सौधर्म और ऐशान स्वर्ग केइन्द्र बैठे । इन दोनों इन्द्रों केसमीप से लेकर क्षीर-समुद्र तक देवों की दो पंक्तियां बनी हुई थीं जो वहाँ से भरे चलसे कलश हाथों हाथ इन्द्रों ने विक्रिया से हजार हजार हाथ बना लिये थे इसलिये उन्होंने एक साथ हजार कलशे लेकर बालक का अभिषेक किया। जिन बालक में जन्म से ही अतुल्य बल था इसलिये वे इस विशाल जलधार से रंचमात्र भी व्याकुल नहीं हुयें थें ।

यदि वह धारा किसी वज्र पर्वत पर पड़ती तो- वह खण्ड हो जाता, पर वह प्रचण्ड जलधारा जिनेन्द्र बालक पर फुलों की कली से भी लघु मालूम पड़ती थी । जब अभिषेक का कार्य पूरा हो गया तब इन्द्राणी ने उत्तम वस्त्र से- शरीर पोंछकर उन्हें तरह तरह केआभूषण पहिनाये ।देवराज वे मनोहर शब्द औरह अर्थसे भरे- हुए अनेक स्तोंत्रों केद्वारा उनकी खूब स्तुति की ।

भक्तिसे भरी हुई देव नर्तकियों ने सुन्दरी अभिनय नृत्य किया और समस्त देवो ने उनका जन्म कल्याणक देखकर अपनी देव पर्याय का सफल समझा था । ये बालक वृष-धर्म से शोबायमान हे ऐसा सोचकर इन्द्रने उसका वृषभनाथ नाम रक्खा । इस तरह इन्द आदि देवमण्डल मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव समाप्त कर पुन: अयोध्या को वापिस आये ओर वहां उन्होंने जिन बालक को माता की गोद में देकर अभिषेक विधि केसब समाचर कह सुनाये । जिससे उनकेमाता पिता आदि परिवार केलोग बहुत ही प्रसन्न हुए । उसी समय इन्द्र ने आनन्दोद्यत नामका नाटक किया था जिस में उसने अपनी अनूटी नृत्य-कला केद्वारा समस्त दर्शकों केचित्त को मोहित कर लिया था । फिर विक्रिया से भगवान वृषभदेव के महाबल आदि दश पूर्वभवों का दृश्य परिचय कराया । महाराज नाभिराज ने भी दिल खोलकर पुत्रोत्पत्तिके उपलक्ष्य में अनेक उत्सव किये थे । उस समय अयोध्यापुरी की शोभा सजावट के सामने कुबेर की अलकापुरी और इन्द्र की अमरावती बहुत कुछ फीकी मानूम होती थी । जन्माभिषेक का महोत्सव पूरा कर देव और देवेन्द्र अपने अपने स्थानोंपर चले गये । जाते समय इन्द्र भगवान केलालन - पालन में चतुर कुछ देवकमार और देव- कुमारियां को नाभिराज केभवन पर छोड़ गया था । वे देव - कुमार विक्रिया से अनेक रुप बनाकर भगवान का मनोरंजन करते थे ओर देव-कुमारियां तरह-तरह केउत्तम पदार्थों से उनका लालन पालन करती थीं । कहते हैं कि इन्द्रने भगवान केहाथ केअंगूठे में अमृत छोड़ दिया था जिसे चूस चूसकर वे बड़े हुए थे , उन्हें माता केदूध पीने की आवश्यकता नहीं हुई थी । बाल - भगवान् अपनी लीलाओं से सभी का मन हर्षित करते थे ऐसा कौन होगा उस समय जो बालक की मन्द मुसकान तोतली बोली और मनोहर चेष्टोंओ से प्रमुदित हो जाता हो ? उन्हें जन्मसे ही मति श्रुति और

अवधि ज्ञान था । उनकी बुध्दी इतनी प्रखर थी कि उन्हें किसी गुरुसें विद्या सीखने- की आवश्यकता नहीं पड़ी । वे अपने आप ही समस्त विद्याओं और कलाओं में कुशल हो - गये थे । उनकेअद्‌भूत पाण्डित्य के सामने अच्छे अच्छे विद्वानों का अभिमान छोड़ देना पड़ता था । वे कभी अलंकार शास्त्र की चर्चा करते थे , कभी तरह तरह की पहेलियां केद्वारा मन बहलाया करते थे,कभी न्याय शास्त्र की चर्चा से अभिमानी वादियों का मान दूर करते थे , कभी सुन्दर संगीत सुधाका पान करते थे , कभी मयूर, तोता , हंस, सारस आदि पक्षियों की मनाहेर चेष्टोंये देख देख कर प्रसन्न होते थे , कभी आए हुये प्रजाजन से मधुर वार्तालाप करते थे, कभी हाथीपर सवार होकर नदी, नद, तालाब , बगीच आदिकी सैर करते थे और कभी ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर प्रकृति की शोभा देखते थे । इस प्रकार राजकुमार वृषभनाथ ने सुखपूर्वक कुमार काल व्यतीत कर तरुण अवस्था में पदापर्ण किया । उस समय उनकेशरीर की शोभा तपाये हुये काञ्चनकी तरह बहुत ही भली मालूम होती थी । उनका शरीर नन्द्यावर्त आदि एक सौ आठ लक्षण और मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जनों से विभूषित ता । उनका रुधिर दूधकेसमान सफेद था, शास्त्र, पाषण, धूप, सरदी वर्षा, विष अग्नि, कंटक आदि कोई भी वस्तुये उन्हें कष्ट नहीं पहूंचा सकती थी । उनकेशरीर से फूले हुये कमल सी गन्ध निकलती थी । जवानी ने उनकेअंग प्रत्यंग में अपूर्व शोभा ला दी थी । यदि आप कवियों की वाणी का गप्प न समझते हों तो में कहूंगा कि उस समय निशानायक चन्द्रमा अपने कलंक को दूर करने केलिये भगवान का मुख बन गया था और उसकी स्त्री निशा अपना दोष नाम हटाने केलिये उनकेकेश बन गई थी । यदि ऐसा न हुआ होता तो वहां उत्पल (नयन-कुमुद) और उत्तम श्री (अन्धकार की शोभा तथा उत्कृष्ट शोभा) कहां से आती ? क्योंकी उत्पलों की शोभा चन्द्रमा केरहते हुये और अन्धकारकी शोभा रात केरहते हुये ही होती है । उनके गले में तीनों रेखायें थीं जिन से मालूम होता ता कि वह गला तीनों लोकों मे सबसे सुन्दर हैं । गले की सुन्दर आभा देखकर बेचारे शंख से न रहा गया और वह पराजित होकर समुद्र में डूब - मरा । कौई कहते हैं कि उनका वक्ष:स्थल मोक्षस्थान था क्योंकि वहां पर शुध्द दोष रहित मुक्ता-मोती तथा मुक्त जीव विद्यमान थे । और कोई कहते हैं उनका वक्ष:स्थल हिमालय पर्वत था क्योंकि उसपर मुक्ता-हार-रू पी गंगा का प्रवाह पड़ रहा था । उनकी नाभि सरोवर केसमान सुन्दर थी उसमें मिथ्यात्व रू पी घाम से संतप्त हुआ धर्म रू पी हस्ती डूबा हुआ था इसलियें उसकेपास काली रोमराजि उस हस्ती की मदधारा सी मालूम-होती थी । उनकेकन्धे बैल ककुद केसमान अत्यन्त स्थुल ते भुजाये घुटनों तक लम्बी । उरु त्रिभुवन रुप भवनकेमजबूत खम्बों केसमान जान पड़ती थी और चरण लाल कमलों की तरह मनोहर थे ।

यह आश्चर्य की बात कि जो जवानी प्रत्येक मानव ह्रदय विकार की छाप लगा देती है उसी जवानी में भी राजपुत्र वृषभनाथ केमनपर विकार केकोई चिन्ह प्रकट नहीं हुये थे । उनकी बालकों जैसी खुली हंसी ओर निर्विकार चेष्टायें उस समय भी ज्यों की त्यों विद्यमान थी।

एक दिन महाराज नाभिराज ने वृषभनाथ के बढ़ते हुये यौवनको देखकर उनका विवाह करना चाहा पर ज्यों ही उनकी निर्विकार चेष्टाओं और उदासीनता पर महाराज की दृष्टी पड़ी त्यों ही कुछ हिचक गये । उन्होंने सोचा- कि इनका ह्रदय अभीसे निर्विकार है विकार शून्य है । जब ये बन्धन मुक्त हांथी की नांई हठसे तपके लिये बन को चल जावेंग तब दूसरे की लड़ी का क्या होगा ? क्षण एक ऐसा विचार करने के बाद उनके दिलमें आया कि संभव है विवाह कर देनेसे ये कुछ संसार से परिचित हा सकेगे इसलिए सहसा वनको न भागेंगे और दूसरी बात यह भी है कि यह युगका प्रारम्भ है । इस समय के लोग बहुत भोले हैं, सृष्टी की व्यवस्था एक चाल से नहीं के बराबर है । लोग प्राय: एक दूसरे का अनुकरण करते हैं अतएव इस युगमें विवाह की रीति का प्रचलित करना तथा सृष्टि को व्यवस्थित बनाना अत्यन्त आवश्यक है । सम्भव है जब तक इनकी कालसन्धि (तप करनेके योग्य समयकी प्राप्ति) नहीं आई है तब तक ये विवाह सम्बन्ध स्वीकर कर भी लेंगे ऐसा सोचकर किसी समय पिता नाभिराज वृषभनाथ के पास गए वृषभनाथ ने पिता का उचित सत्कार किया । कुछ समय ठहरकर नाभिराज ने कहा हे त्रिभुवन पते ! यद्यपि मैं समझता हूं कि आप स्वयंभू हैं अपने आप ही उत्पन्न- हुए हैं, मैं आपकी उत्पत्ति में इस तरह केवल निमित्त मात्र हूं जिस तरह कि सूर्य की उत्पत्ति मैं उदयचाल होता है तथापि निमित्त मात्र की अपेक्षा मैं आपका पिता हूं इसलिए मेरी आज्ञा का पालन करना आपका कर्तव्य हैं । मुझे आशा है कि आप जैसे उत्तम पुत्र गुरुजनों की बातों का उल्लघंन नहीं करेंगे । मै जों बात कहना चाहता हूं वह यह है कि इस समय आप लोक की सृष्टी की और दृष्टी दीजिए जिसमें आपको लोक की सृष्टी प्रवृत्त हुआ देखकर दूसरे लोग भी उसमें प्रवृत्त होवें । इस समय मानव समाज को सृष्टी का क्रम सिखलाने के लिए आप ही सर्वोत्तम है , आपका ही व्यक्तित्व सबसे ऊंचा है । इस के लिए आप किसी योग्य कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध करने की अनुमती दीजियेगा । जब इतना कहकर नाभिराज चुप हो रहे तब भगवान् वृषभनाथ मन्द मुस्कान से पिता के वचनो का उत्तर दिया । महाराज नाभिराज पुत्र की अनुमति पाकर बहुत प्रसन्न हुऐ उन्होंने उसी समय इन्द्र की सहयता से तैयारीया करनी शुरु कर दि और किसी शुभमुर्हत में राजा कच्छ और महाकच्छ की बहिनें यशस्वी थी तथा सुनन्दा के साथ विवाह कर दिया । यशस्वती और सुनन्दा के सौंन्दर्य के विषय में न लिखकर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वे दोनों अनुपम सुन्दरी थीं उस समय उन जैसी सुन्दरी स्त्रियां दूसरे नहीं थी । भगवान के विवाहोत्सव में देव तथा देवराज सभी शामिल हुए थे पुत्र वधुओं को - दुखकर माता मरुदेवी का ह्रदय का फूला न समाता था । उन दिनों अयोध्या में कहीं तरह के उत्सव मनाये गये थे । यशस्वती और सुनन्दा ने अपने रुप - पाशसे वृषभनाथ के चंचल चित्त को अपने वश में कर लिया था । वे उन दोनों के साथ नाना तरहके की क्रीडएं करते हुए सुखसे समय बिताने लगे ।

किसी एक दिन रातके समय यशस्वती महादेवी अपने महल की छतपर पडे हुए रत्नखचित पलंगपर सो रही थी । सोते समय उसने रात्रि के पिछले पहर में सुमेरू पर्वत सूर्य, चन्द्र, कमल,

महीग्रसन और समुद्र ये स्वप्न देखे । सवेरा होते ही माड.लिक बाजो तथा बन्दीजनों की स्तुतियों के मनोहर शब्दोंसे उसकी नींद खुल गई । जब वह सोकर उठी तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ । उसने स्वप्नों का फल जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर जब सफलता न मिली तब नहा धोकर सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनकर भगवान वृषभनाथ के पास गई । उन्होंने उसखा शूब सत्कार किया तथा अपने पासमें ही सुवर्णमय आसन पर बैठाया । कुछ समय बाद उनसे महादेवी ने रात में देखे हुए स्वप्न कहे और उनका फल जानने की इच्छा प्रकट की । ह्रदय वल्लभा के वचन सुनकर भगवान वृषभनाथ ने हंसतें हुए हुए कहा -की सुन्दरि ! तुम्हारे मेरु पर्वत के देखने से चक्रवर्ती, सूर्य के देखने से प्रतापी, चन्द्रमा के देखने से कान्तिमान् कमल के देखने से लक्ष्मीवान्, महीग्रसन के देखने से समस्त वसुधा का पालक और समुदर् के देखने से गम्भीर ह्रदय वाला चरम शरीरी पुत्र उत्पन्न होगा । वह पुत्र इस इक्ष्वाकु वंश की कीर्ती-कौमुदी को प्रसारित करेगा और अपने अतुल्य भुजबळ से भरत क्षेत्र के छहों खण्डों का राज्य करेगा । पतिदेव के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर यशस्वती महादेवी बहुत ही हर्षित हुई । इसके अनन्तर व्याघ्रका जीव सुवाहु, जो कि सर्वार्थ सिध्दि में अहमिन्द्रमे हुआ था , वहां से चयकर यशस्वती के गर्भ में आया । धीरे-धीरे महादेवी के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट हो गये , समस्त शरीर सफेद हो गया , स्तन-युगल स्थूल और कृष्ण वर्ण हो गये , मध्य भाग कृष हो गया और उदर वृद्धी को प्राप्त हो गया था । उस समय उसका मन शृंगार चेष्टाओं से हटकर वीर चेष्टाओं में रमता था । वह शाणपर घिसी हुई तलवार में मुंह देखती थी , योध्दाओं के वीरता भरे वचन सुनती थी. धनुष की टंकार सुनकर अत्यन्त हर्षित होती थी , पिंजडे में बन्दे किये हुए सिंहोके बच्चोंसे प्यार करती थी ओर शूर वीरोंकी युध्द कला देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थी । महादेवी की उक्त चेष्टोंओंसे स्पष्ट मालूम होता था कि उसके गर्भमे किसी विषेश पराक्रमी पुरुषने अवतार लिया है ।

क्रम-क्रमसे जब नौ महीने बीत चुके तब किसी शुभ लग्नमें प्राता:काल समय उसने- एक तेजस्वी बालक को प्रसूत किया । उस समय वह बालक प्रतापी सूर्य की नाई और यशस्वती देवी प्राची दिशाकि नाई मालूम होती थी । वह बालक अपनी भुजाओंसे जमीनको छूता हुआ उत्पन्न हुआ था , इसलिये निमित्त -शास्त्रके जानकारीने कहा था हि यह पुत्र सार्वभौम समस्त पृथ्वीका अधिर्पात अर्थात् चक्रवर्ती होगा । पुत्र -रत्नकी उत्पत्तीसे जिनराज वृषबदेव बुहत ही प्रसन्न हुए थे । मरुदेवी और नाभिकराजा के हर्षका तो पार ही नहीं रहा था । उस समय अयोध्यामें ऐसा काई भी मानव नहीं था जिसे वृषभदेवके पुत्र की उत्पत्तिसे सुनकर हर्ष न हुआ हो । संम्पूर्ण नगरी तरह तरहकी पताकाओसे सजाई गई थी , राजमार्ग सुगंधित जल से सींचे गये थे और उनपर सुगंधित फूल बिखेरे गये थे । प्रत्येक घर केआंगन मे रत्नचूर्ण से चौक पूरे गये थे और अट्टालिका ंमें सारड़ी, तबला आदि मनोहर बाजोंके साथ संगीत चतुर पुरुषों के श्रुति सुभग गान हुए थे । राजा नाभिराज ने जो दान दिया था उससे पराजित होकर कल्पवृक्ष कामधेनु ओर चिन्तामणि रत्न भी भूलोक छोड़ कहीं अन्यत्र जा छिपे थे । कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओं ने

मिलकर पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और उसका भरत नाम रखा । भरत अपनी बाल चेष्टाओं से माता पिताका मन हर्षित करता हुआ बढ़ने लगा ।

भगवानवृषभनाथ के बज्रजंघ भव में जो आनन्द नामक पुरोहित था और क्रम-क्रमसे सर्वार्थ सिध्दि मे अहमिन्द्र हुआ था वह कुछ समय बाद यशस्वी को वृषभसेन नामका पुत्र हुआ । फिर क्रम-क्रम से सेठ धनमित्र, शार्दूलार्य, वहाहार्य, वानरार्य और नकुलार्य के जीव सर्वार्थसिध्दिसे च्युत हाकर उसी यशस्वती के क्रम से अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर ओर वरवीर नाम के पुत्र हुए । इस तरह भरत के बाद महादेवी यशस्वतीके निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई । अब वृषभनाथ की दूसरी पत्नी सुनन्दाका हाल सुनिये ।

किसी दिन रात के समय सुनन्दाने भी उत्तम स्वप्न देखे जिस के फलस्वरुफ उसके गर्भ में वज्रजंघ भवका सेनापति जो क्रम क्रम से सर्वार्थसिध्दि में अहमिन्द्र हुआ था अवतीर्ण हुआ । नौ माह के बाद सुनन्दाने बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया । बाहुबलीका जैसा नाम था वैसे ही उसमें गूण थे । उसकी वीर चेष्टाओं के सामने यशस्वती के समस्त पुत्रों को मुंहकी खानी पड़ती थी बृषभेश्वर की , वज्रजंघ भव में जो अनुन्दरी नामकी बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दाके सुन्दरी नामकी पुत्री हुई । इस प्रकार भगवान् वृषभनाथ का समय अनेक पुत्र पुत्रियों के साथ सुखसे व्यतीत होता था ।

एक दिन भगवान् वृषभेश्वर सभाभवन में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे, कुछ अमरकुमार चमर ढोल रहे थे । बन्दीगण, गर्भकल्याणक जन्मकल्याण आदिकी महिमा का बखान कर रहे थे पासमें ही देव, मनुष्य, विद्याधर वगैरह बैठे हुए थे। इतनेंमे ब्राह्मी और सुन्दरी कन्यायें पास पहुंची । कन्याओनें पिता वृषभदेव को झुक कर प्रणाम किया । वृषभदेवने उन्हें उठा कर अपनी गोदमें बैठा लिया ओर प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा । पुत्रियों की विनयशीलता देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए । उसी समय उन्होंने विद्याप्रदान के योग्य समझकर उन्हें विद्याप्रदान करने का निश्चय किया और निश्चयनुसार वर्णमाला सिखलाने के बाद उन्होंने ब्राह्मीका गणितशास्त्र और सुन्दरी का- व्याकरण, छन्द तथा अलंकार शास्त्र सिखलाये । ज्येष्ठ भरत के लिये- अर्थशास्त्र और नाट्यशास्त्र वृषभसेनके लिये संगीत- शास्त्र , अनन्त् विजयके लिये चित्रकला और घर बनाने की विद्या, बाहुबली के लिये कामतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र. आयुर्वेद, धनुर्वेद ,हस्तितन्त्र, अश्वतन्त्र तथा रत्नपरीक्षा आदि शास्त्र पढ़ाये . इसी तरह अन्य पुत्रोंके लिये भी लोकापकरी समस्त शास्त्रों पढ़ाये उस समय अनेक शास्ध्रों के जानकार पुत्रोसे आदि शास्त्र पढ़ाये । इसी अन्यत्र की तरह धिरे हुए भगवान् तेजस्वी किरणों से उपलक्षित सूर्य के समान मालूम होते थें । इस तरह महा पवित्र पुत्र एक और स्त्रियोंके- साथ विनोदमय जीवन बिताते हुए भगवान् वृषभनाथ का बहुत कुछ समय क्षण एक के समान बीत गया था ।

यह पहले लिख आये हैं कि वह समय अवसर्पिणी काल था इसलिये प्रत्येक विषय में ह्रास ही ह्रास होता जाता था । कुछ समय पहले कल्पवृक्षों के बाद बिना बोयी हुई धान्य पैदा होती थी पर अब वह

नष्ट हो गई, औषधि वगैरह की शक्तियां कम हो गई इसलिये मनुष्य खाने पीनकेलिये दुखी होने लगे । सब ओर त्राहि त्राहिका आवाज सुनाई पड़ने लगी । जब लोगों को अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नही सूझ पड़ा तब वे एकत्रित होकर महाराज नाभिराज की सलाहसे भगवान् वृषभनाथ के पास पुहंचे और दीनता भरे वचनों में प्रार्थना करने लगे ऐ त्रिभुवनपते ! हे दयानिधे ! मह लोगोंकेदुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुकेथे पर अब धान्य वैगरह भी नष्ट हो गई है । इसलिए भूख प्यासकी बाधायें हम सबको अधिक कष्ट पहुंचा रही है । वर्षा, धूप और सर्दीसे बचनेके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं हैं नाथ ! इस तरह हम लोग कब तक जीवित रहेंगे, आप हम सबकेउपकार केलिए ही पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए है । आप विज्ञ हैं , समर्थ हैं, दयालुता केसमुद्र हैं इसलिये जीविका केकुछ उपाय बतलाकर हमारी रक्षा कीजिये , प्रसन्न होइये । इस तरह लोगोंकी आर्त वाणी सुनकर भगवान् वृषभदेव का ह्रदय दया से भर आया । उन्होनें निश्चय किया कि पूर्व पश्चिस विदेहों की तरह यहां पर भी ग्राम शहर आदिका विभाग कर असि.मषी, कृषी शिल्प वाणिज्य और विद्या इन छह कार्यों की प्रवृत्ती करनी चाहिए । ऐसा करने पर ही लोग सुख से आजीविका कर सकेंगें । ऐसा निश्चय कर उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया और इच्छानुसार समस्त व्यवस्था करनेकेलिये इन्द्रका स्मरण किया । उसी समय इन्द्र समस्त देवों के साथ अयोध्यापुरी आया और वृषभेश्वर केचरण कमलों में प्रणाम कर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा था । भगवानने अपने समस्त झुका कर उनकेविचार इन्द्रकेसामने प्रकट किये । इन्द्रने हर्षित हो मस्तक कर उनकेविचारों का समर्थन किया और स्वयं परिवार केसाथ सृष्टिकी रचना करने केलिये तत्पर हो गया ।

सबसे पहले उसने अयोध्यापुरी मे चारो दिशाओंमे बड़े-बड़े सुन्दर जिनमन्दिरोकी रचना की फिर काशी-कौशल-कलिंग-करणाटक अंग-बंग-मगध-चोंल-केरल-मालवा महाराष्ट्र सोरठ-आन्ध-तुरुष्क-कररसेन विदर्भ आदि देशोंका विभाग किया । उन देशोमें नदी- नहर-तालाब- वन-उपवन आदि लोकोपयोगी सामग्रीका निर्माण किया । फिर उन देशोंकेमध्यमें परिखा कोट बगीचा आदि से शोभायमान गांव पुर खेट कर्वट आदिकी रचना की । उसी समय पुर अर्थात् नगरो का विभाग करनेवाला इन्द्रका पुरन्दर नाम सार्थक हो गया था । वृषभेश्वर की आज्ञा पाकर देवन्द्र ने उन नगरों ठहराया । प्रजानन भी रहने केलिए ऊंचे-ऊंच मकान पर अत्यन्त् प्रसन्न हुए । इंद्र अपना कर्तव्य पूरा कर समस्त देवों केसाथ स्वर्गको चला गया । किसी दिन-मौका पाकर वृषभ देवने प्रजा केलोगों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी कल्पना कर उन्हें उनकेयोग्य आजीविकाकेउपाय बतलाये । उन्होंने क्षत्रियों केलिए धनुष-बाण तलवार आदि शस्त्रों का चलाना सिखलाकर दीन हीन जनों की रक्षा करने का कार्य सौंपा । वैश्यों के लिये- देश विदेशों में घुमकर तरह तरहकेव्यापार सिखलाए और शुद्रोंकेलिए दूसरो की सेवा शुश्रूषा का काम सोंपा था । उस समय भगवान् का आदेश लोगोंने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया था जिससे. सब और सुख शांन्ति नजर आने लगी थी ।

वृषभेश्वर ने सृष्टिकी सुव्यवस्था की थी इसलिएलोग उन्हें स्रष्टा-ब्रम्ह्मा नाम से, और उस युगको कृतयुग नाम से पुकारने लगे थे । जब भगवान् आदिनाथ का प्रजा केऊपर पूर्ण व्यक्तितत्व प्रगट हो गया तब इंद्र ने समस्त देवों केसाथ आकर महाराज नाभिराज की सम्मति पूर्वक उनका राज्याभिषेक किया । राज्याभिषेक के समय अयोध्यापुरी की खूब सजावट की गई थी, गगनचुम्बी मकानों पर कई रंगकी पताकाएं फहराई गई थीं, जगह जगह पर तोरणव्दार बनाकर उनमें मणिमयी बन्धन मालाएं बांधी गई थीं और सड़के सुगन्धित जलसे सींची जाकर उनपर हरी-हरी दूब बिछाई गई थी । जगद्गुरू आदिनाथ का राज्याभिषेक था और देव देवेन्द्र उसकेप्रवर्तक थे तब किसकी कलम में ताकत है जो उस समयकी समग्र शोभाका वर्णन कर सके।

मणिखचित सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् आदिनाथ को तेजोमय मुख ठीक सुर्य केसमान चमकता था । पासमें खड़े हुए बन्दीगण मनोहर शब्दोंमें उनकी कीर्ति गा रहे थे । महाराज नाभिराजने अपने हाथ से उनकेमस्तकपर राज्यपट्ट बांधा था । उस समय सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग केइन्द्र चमर ढोल रहे थे और ईशान स्वर्ग का इन्द्र शिरपर छत्र लगाए हुए था । सौधर्मेन्द्र ने सभास्थल में आनन्द नामका नाटक किया था जिससे समस्त देव, दानव नर, विद्याधर वगैरह अत्यन्त हर्षित हुए थे । भगवान् आदिनाथ ने पहले प्रभावक शब्दों में सुन्दर भाषण दिया जिस में धर्म, अर्थ आदि पुरू षार्थों का स्पष्ट विवेचन किया गया था । फिर लघुता प्रगट करते हुए सृष्टीकेभार अपने कन्धोंपर लिया था -राज्य करना स्वीकार किया था । भगवन् का राज्याभिषेकसमाप्त कर देव, देवेन्द्र वगैरह अपने स्थानों पर चले गये ।

यह हम पहले लिख आए हैं कि वृषभदेव ने प्रजाको सुव्यवस्थित बनाने केलिए उसमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्णका विभाग कर दिया था । तथा उन्हें उनकेयोग्य कार्य भार सौंप दिया था । लोग उक्त व्यवस्थासे सुखमय जीवन बिताने लगे थे । पर कालके प्रभावसे लोगों के हृदय उत्तरोत्तर कुटिल होते जाते थे इसलिए कोई कभी वर्ण - व्यवस्था के क्रमका उल्लंघन भी कर बैठते थे । वह क्रमोल्लंघन आदिनाथको सह्य नहीं हुआ इसलिए उन्होंने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका ख्याल रखते हुये अनेक तरहकेदण्ड-विधान नियुक्त किये थे ।

उन्होंने अपने सिवाय सोमप्रभ, हरि, अकम्पन और काश्यप नाम केचार महा माण्डलिक राजाओं का भी राज्याभिषेक कराया था । उन चारों माण्डलिक राजाओं मे प्रत्येक केचार चार हजार मुकुटबध्द राजा आधीन थे। आदिनाथ ने इन राजाओंको अनेक प्रकारके दण्ड-विधान सिखलाकर राज्य का भार सौंप सोमप्रभ को कुरू राज नाम से पुकारा था और उनकेवंशका नाम कपरू वंश रक्खा था । अकम्पन को श्रीधर नाम से प्रख्यात किया था और उनकेवंशका नाम नाथवंश रक्खा था, एवं काश्यप को मघवा नामसे पुकारा था और उनके वंश का नाम उग्रवंश रख्या था । इसके सिवाय कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओंको भी वृषभेश्वर ने अच्छे अच्छे देशो का राजा बना दिया था । अपने पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र भरत को युवराज बनाया तथा शेष पुत्रो को भी योग्य पदोंपर नियुक्त किया था ।

भगवान् वृषभनाथ ने समस्त मनुष्यों को इक्षु (ईख)के रसका संग्रह करने का उपदेश दिया था इसलिये लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे थे । उन्होंने प्रजा पालन केउपाय प्रचलित किये थे, इसलिये उन्हें लोग प्रजापिता कहते लगे थें । उन्होंने अपने वंशकुल का उध्दार किया था इसलिये -लोग उन्हें कुलधर कहते थें । वे काश्य अर्थात् तेज के अधिपति थे इसलिये लोग उन्हें काश्यप कहते थे । वे कृतयुग के प्रारभ्भ में सबसे पहले हुए थे इसलिये लोग उन्हें आदि ब्रह्मा नामसे-पुकारते थे । अधिक कहा तक कहें, उस समय की प्रजा ने उनकेगुणों से विमुग्ध होकर कईतरह केसुन्दर सुन्दर नाम रख लिये थे ।

उनकेराज्य काल में कभी किसी जगह राजाओं मे परस्पर कलह नहीं हुई । सब देश खूब सपन्न थे कहीं भी ईति भीतिका डर नहीं था, सभी लोग सुखी थे । वहांका प्रत्येक प्राणी राज राजेश्वर भगवान् वृषभदेव केराज्यकी प्रशंसा किया करता था । इस तरह उन्होंने-तिरेसठ लाख पूर्व वर्षतक राज्य किया । सो उनका वह विशाल समय पुत्र पौत्र आदिका सुख भोगते सहज ही में व्यतीत हो गया था ।

एक दिन भगवान् वृषभदेव राजसभामें सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे । उनकेआसपास में और भी अनेक राजा, सामन्त, पुरोहित मन्त्री आदि बैठै हुए थे । इतनेमें उपासना करने केलिये अनेक देव देवियों के साथ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र आया । आते समय इन्द्र,सोचता आता था कि भगवान वृषभदेव अबतक सामान्य मनुष्योंकी भांति विषय-वासनामें फंसे हुए हैं । जबतक वे विषय-वासना से, हटकर मुनिमार्ग में पदार्पण नहीं करेगे तब तक संसार का कल्याण होना मुश्किल है । इसलिये किसी छलसे आज इन्हें विषय-भोंगोंसे विरक्त बना देने का उद्योग करना चाहिये । यह सोचकर उसने, राजसभा में एक नीलाञ्जना नामक अप्सरा को जिसकी आयु अत्यन्त अल्प रह गई थी नृत्य करने के लिये खड़ा किया । तब नीलाञ्जना नृत्य करते-करते क्षण एक में बिजली की भांति विलीन हो गई तब इन्द्रने रसमें भंग न हो इसलिये उसीकेसमान रू प और वेष-भूषावाली दूसरी अप्सरा नृत्य-स्थल में खड़ी कर दी । वह भी नीलाञ्जना की तरह हाव-भावपूर्वक मनोहर अभिनय दिखाने, लगी । सामान्य जनता को इस सब परिवर्तन का कुछ भी पता नहीं लगा पर भगवान् की दिव्य दृष्टिसे यह समाचार छिपा न रहा ।

वे नीलाञ्जना केअदृष्य होते ही संसार से एकदम उदास हो गये। ईन्द्रने अपनी चतुराई से जो दूसरी अप्सरा खड़ी की थी उसका उनपर कुछ भी असर नहीं हुआ । वे सोचने लगे कियह शरीर हवा के वेग से कम्पित दीप-शिकार की नांई नश्वर है, यह लक्ष्मी बिजली की चमक की तरह क्षणभंगुर है, यौवन संध्या की लाली केसमान देखते देखते नष्ट हो जाता है और यह विषय-सुख समुद्र की लहरोंकेसामन चंचलहै । इन्द्र की आज्ञा से नृत्य करती हुई यह कमलनयनी देवी भी जब आयु क्षीण हो जानेपर इस अवस्था मृत्यु को प्राप्त हुई है तब कौन दूसरा संसार में अमर होगा ? देवों केसामने मनुष्यों की आयु ही कितनी है ? यह लक्ष्मी विषराशि-समुद्र से उत्पन्न हुई है तब भी लोग इसे अमृत सागर से उत्पन्न हुई बतलाते - हैं। जो शरीर इस आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह मिला हुआ है-सुख दु:ख में साथ देता है वह भी जब समय पाकर आत्मा से न्यारा हो जाता है जब बिलकुल न्यारे रहनेवाले स्त्री, पुत्री, पुत्र

धन सम्पत्ति वगैरह में कैसे स्थिर बुध्दि की जा सकती है ? यह प्राणी पाप के वश नरकगति में जाता है, वहां सागरों वर्ष पर्यन्त अनेक तरह के दुख भोगता है वहांसे, निकल तिर्यंचगति मेशीत-उष्ण भूख-प्यास आदि के विविध दु:ख उठाता है । कदाचित् सौभाग्य से, मनुष्य भी हुआ तो दरिद्रता रोग आदिसे दु:खी होकर हमेशा संक्लेश का अनुभव करता है और कभी कुछ पुण्योदय से देव भी हुआ तो वहां भी अनेक मानसिक दु:खोंसे दु:खी होता रहता है । इस तरह चारो गतियों में कहां भी सुखका ठिकाना नहीं है । इस मनुष्य पर्याय को पाकर मदि मैने आत्म-कल्याण के लिये प्रयत्न नहीं किया तब मुझ से मूर्ख और कोन होगा ? इधर भगवान अपने ह्रदय में ऐसा विचार कर रहे थे उधर ब्रह्मलोक पांचवें स्वर्ग में रहनेवाले -लौकान्तिक देवों के आसन कम्पायमान हुए जिससे वे भगवान आदिनाथ का ह्रदय विषयों से विरक्त समझ शीघ्र ही उनके पास आये और तरह तरह के वचनो सें स्तुति कर उनके विचारो का समर्थन करने लगे । देवों के वचन सुनकर उनकी वैराग्य-धारा अत्यन्त वेगवती हो गई । अब उन्हें राज्य सभा में, गगन-चुम्बी महलों में, स्वर्गपुरी को जीतनेवाली अयोध्यापुरी में और स्त्री, पुत्र,धन धान्य आदि में थोंडा भी आनन्द नहीं आता था । जब लौकान्तिक देव अपना कार्य समाप्त कर हंसों की नांई आकाश में उड़ गये तब इन्द्र प्रतीन्द्र आदि चारों निकाय के देवोंने अयोध्यापुरी आकर जय जय घोषणा के साथ भगवान् का क्षीरसागर के जलसे अभिषेक किया । अभिषेक के बाद में तप कल्याण की विधि प्रारभ्भ की । इसी बीचमें भगवान् वृषभदेव ने ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये राज्यगद्दी देकर बाहुबली को युवराज बना दिया था जिससे वे राज्य कार्य की ओरसे बिलकुल निराकुल होगये थे । उस समय तप कल्याणक और राज्यभिषेक इन दो महान् उत्सवोंसे नर-नारियों और देव-देवियों केही क्या प्राणी मात्रके ह्रदयों में आनन्द सागर लहरा रहा था । त्रिभुवनपति भगवान् वृषभनाथ,महाराज नाभिराज और महारानी मरू देवी आदि से आज्ञा लेकर बन में जाने केलिये देव-निर्मित पालकीपर सवार हुए। वह पालकी खूब सजाई गई थी उसके ऊपर कई रंगोंकी पताकाएं लगी हुई मणियों की छोटी छोटी घंटियां रू ण-झुण शब्द करती थीं । सबसे पहले बड़ें-बड़ें भूमिगोचरी राजा पालकी को - अपने कंधोंपर रखकर जमीन में सात कदम चले फिर विद्याधर राजा कन्धोंपर रखकर सात कदम- आकाश में चले इसकेअनन्तर प्रेमसे भरे हुए सुर असुर उस पालकी को अपने कन्धेंपर रखकर आकाश मार्गसे चले।

उस समय देव-देवेन्द्र जय जय शव्द बोलते और कल्पवृक्षके सुगन्धित फूलों की वर्षा करते जाते थें । असंख्य देव-देवियां और नर-नारीका समूह भगवान के पीछे जा रहा था । शोकसे विव्हल माता मरू देवी, महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा आदि अंत:पुरकी नारियां तथा महाराज नाभिराज, भरतेश्वर, बाहुबली, कच्छ, महाकच्छ, आदि प्रधान प्रधान राजा अत्यन्त उत्कण्ठित भाव से भगवान के तप कल्याणक की महिमा देख रहे थे । देव लोग भगवान् की पालकी अयोध्यापुरी के समीपवर्ती सिध्दार्थ नामक बन में ले गये । वह बन चारो ओरसे सुगन्धित फूलों की सुवासने सुगन्धित हो रहा । वहां चतुर देवांगनाओंने कई तरह के चौक पूर रक्खे थे । देवों ने एक सुन्दर पटमण्डप बनवाया था जिसमें

देवांगनाओं का मनोहर अभिनय-नृत्य हो रहा था । वह बन गन्धर्व किन्नरों के सुरीले संगीत से गूंज रहा था । बन के मध्य भाग में एक चन्द्रकान्त मणिकी शिला पड़ी थी । पालकी से उतर कर भगवान् उसी शिलापर बैठ गये । वहां उन्होंने, क्षण भर ठहर कर सबकी ओर मधुर दृष्टि से देखा और फिर देव,देवेन्द्र तथा कुटुम्बी -जनोंसे, पूछकर समस्त वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये । पंच-मुष्टियों से केस उखाड़ डाले तथा पूर्व दिशाकी ओर मुंहकर खड़े हो सिध्द परमेष्ठि को नमस्कार करते हुए इन्द्र, सिध्द, और आत्मा की साक्षी पूर्वक समस्त परिग्रहों का त्याग करदिया था । इस तरह भगवान् आदिनाथ ने चैत्रबदी नवमी के दिन सायंकाल से समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जिन-दीक्षा ग्रहण की थी । इन्हें दीक्षा लेते समय ही मन:पर्यय ज्ञान और अनेक ऋध्दियां प्रप्त हो गई थीं । इनकेसाथ में कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं ने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी । चार हजार मुनियों से घिरे हुए आदीश्वर महाराज, तारा परिवृत्त चन्द्रमा की तरह शोभायमान होते थे । दीक्षा लेते समय वृषभदेव ने जो केश उखांड कर फेंक दिये थे इन्द्र इन्हें रत्नमयी पिटारी में रखकर क्षीरसागर ले गया ओर उसकी तरल तरंगों में, विनय-पूर्वक छोंड़ आया था । जिनेन्द्र के नया कल्याणक का उत्सव पूराकर समस्त देव देवेन्द्र अपने, स्थान पर चले गये । बाहुबली आदि राजपुत्र भी पितृ वियोग से कुछ खिन्न होते हुए अयोध्यापुरी को लौट आये ।

बन में भगवान् आदिनाथ छह महीनो का अनशन धारण कर एक आसन पें बैठे, हुए थे । धूप, वर्षा, शीत आदिकी बाधएं उन्हें रंग-मात्र भी विचलित नहीं कर सकीं थीं । वे मेरू के सामन अचल थे बालक के समान निर्विकार थे, निर्मेघ आकाश की तरह शुध्द थे, साक्षात् शरीरधारी शामा के समान मालूम होते थे । उनकी दृष्टि नासा के अग्र भाग पर लगी हूई, हाथ नीचे को लटक रहे थे, और मुह के भीतर अन्यत्र रू पसे कुछ मन्त्राक्षरों का उच्चारण हो रहा था । कहने का मतलब यह है कि वे समस्त इंद्रियों को बाह्य व्यापार से हटाकर अध्यात्म की ओर लगा चुके थे । अपने आप उत्पन्न हुए अलौकिक आत्मानन्द का अनुभव कर रहे थे । न उन्हें भूखका दु:ख था, न प्यास का कष्ट था, और न राज्य की ही कुछ चिन्ता थी ।

उधर मुनिराज वृषभदेव आत्मध्यान में लीन हो रहे थे और इधर कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा जो कि देखोदेखी ही मुनि बन बैठे थे - मुनि मार्ग का कुछ रहस्य मही समझ सकेकुछ दिनों में ही भूख प्यास की बाधाओं से तिलमिला उठे । वे सब आपस में सलाह करने-लगे कि भगवान् वृषभदेव ने जाने किस लिये नग्न दिगम्बर हो बैठे हैं । ये हम लोगों से कुछ-कहते ही नहीं है । न उन्हें भूख प्यास की बाधा सताती है, न धूप, वर्षा सर्दीसे ही दु:खी होते-हैं । पर हम लोगों का हाल तो इनसे बिल्कुल उल्टा हो रहा है । अब हम से भूख प्यास की बाधा नहीं सही जाती । हमने सोचा था कि इन्होंने कुछ दिनोंकेलिये ही यह वेष रचा है, पर अब तो दो माह हो गये फिर भी इनकेरहस्य का पता नहीं चलता जो भी हो, शरीर की रक्षा तो हम लोगों को अवश्य करनी चाहिये और अब इसका उपाय क्या हैं ? चलकर उन्हीसे पूछना चाहिये, ऐसी सलाह कर सब राजमुनि, मुनिनाथ भगवान् वृषभदेव केपास जाकर तरह

तरहके शब्दोंमे, उनकी स्तुति करने लगे-उनकी धीरता की प्रशंसा करने लगे । स्तुति कर चुकने के बाद उन्होंने,मुनिवेष धारण करने का कारण पूछा, उसकी अवधि पूछी और हम भूख प्यास का दुःख नहीं सह सकते, यह प्रकट कर उस के दूर करने का उपाय पूछा । पर वे तो मौन व्रत के लिये हुए थे आत्मध्यान में मस्त थें, उनकी दृष्टि बाह्य पदार्थोसे सर्वथा हट गई थी-वे कुछ न बोले जब उन्हें वृषभदेव की ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला उन्होनें-आंख उठाकर भी उन लोगोंकी ओर नहीं देखा तब वे बहुत घबड़ाये और मुनि मार्ग से भ्रष्ट होकर जंगलों में चले गये उन्होंनें, सोचा था कि यदि हम अपने अपने घर वापिस जाते हैं तो- राजा डरत हमको दण्डित करेगा इसलिये इन्हीं सघन बनों में रहना अच्छा हैं । यहां वृक्षों के कन्द, मूल फल खाकर नदी तालाब, आदिका मीठा पानी पीवेंगे और पर्वातों की गुफाओंमें-रहेंगे । अब ये शेर, चीते वगरह ही हम, लोगों के परिवार होंगे, इस तरह भ्रष्ट होकर वे चार हजार द्रव्यलिंगी मुनि ज्योंही तालाब में पानी पीनेके लिये घुसे त्योही उन देवताओंने प्रकट होकर कहा कि यदि तुम दिगम्बर मुद्रा धारण कर ऐसा अन्याय करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे । यह सुनकर किन्हीने वृक्षों के पत्ते व बक्कल पहिनकर हाथमें पलाश वृक्ष के दण्ड के लिये । किन्हींने शरीर में भस्म रमाली और किन्हींने जटायें बढ़ाली । कहने का मतलब यह है कि उन्हें जिसमें सुविधा दिखी वही वेष उन्होंने धारण कर लिया । इतना होने पर भी वे सब लोग भगवान् आदिनाथ के लिये ही अपना इष्ट देव समझते, थे, उन्हें सिंह अपनेको सियार समझते- थे वे लोग प्रतिदिन तालाबोमे से कमल के फूल तोड़कर लाते , थे और उनसे भगवान् की पूजा किया करते थे ।

वृषभदेव को बाह्य जगत को कुछ ध्यान नहीं था । वे समताभावों से क्षुधा तृषा की बाधा सहते हुए आत्मध्यान में लीन रहते थे । जिस बनमें महामुनि वृषभेश्वर ध्यान कर रहे थे उस बन में, ज्नमविरोधी जीवों ने भी परस्पर का विरोध छोड़ दिया था-सिंहनी गायके बच्चे को प्यारसे-दूध पिलाती थी और गाय सिंहनी के बच्चे को प्रेम से पुचकारती थी, मृग और सिंह परस्पर में खेला करते थे, सर्प, नेवला, मोर आदि विरोधी जीव एक दूसरे के साथ क्रीड़ा किया करते- थे, हाथियों के बच्चे लड़े मृगराजों की अयालों गर्दन के बालों को नोचते थे । सच हे-विशुध्द आत्मा का असर प्राणियों, पर ही क्या अचेतन वस्तुओं पर भी पड़ सकता है ।

एक दिन कच्छ और महाकच्छ राजाओं के लड़के नमि और विनमि भगवान् के चरण कमलो के पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगे की हे त्रिभुवन नायक ! आप अपने समस्त पुत्रों तथा इतर राज कुमारों को को राज्य देकर सुखी कर आये पर हम दोंनोंको आपने कुछ भी नहीं दिया । भगवन् ! आप तीनों लोकों के अधीश्वर हैं समर्थ है, दयालु है, इसलिये राज्य देकर हमको सुखी कीजिएगाङ । भगवान आत्मध्यान में लीन हो रहे थे इसलिये यद्यपि नमि विनमिको उनकी ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला तथापि वे अपनी प्रार्थना जारी ही किये गये । इस घटना से एक धरणेन्द्र का आसन कंम्पा जिससे वह भगवान के ध्यान में कुछ बाधा समझकर शीघ्र ही उनके पास आया । आकर जब वह देखता है, कि हुए

दोनों ओर खडे हुये नमि विनमि भगवान से राज्य की याचना कर रहे है, तब धरणेन्द्रने अपना वेष बदलकर दोनो राजकमारों से कहा कि आप लोग राजा भरत से राज्य की याचना कीजियेगा जो आपकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने- में समर्थ है । इनकेपास क्या रक्खा है जिसे, देकर ये आपकी राज्य लिप्सा को पूर्ण करें ! आप लोग राजकुमार इतना भी नहीं समझ सकेकि जिसकेपास होता है वही किसीको कुछ दे सकता है । धरणेन्द्र की बातें सुनकर उन दोनोंने कहा कि महाशय ! आप बड़े बुध्दिमान मालूम होते हैं बोलनें आप बहुत ही चतुर होते हैं आपका वेष भी विश्वसनीय हैं पर मेरी समझ में नहीं आता कि आप बिना पूंछे ही हम लोगों केबीचमें क्यों बोलने लगे ? तीनों लोकों केएक मात्र आधीश्वर वृषभदेव की चरणछाया को छाड़कर भरत से राज्यकी याचना करूं ? जो बेचारा खुद जरा सी जमीन रा राजा है । कहिये महाशय जो कमण्डलु महासागर केजलसे नहीं भरा क्या गोष्पद केजल से भरा जावेगा ? क्या अनोखा उपदेश है आप का ? राजकुमारों की उक्ति प्रत्युक्ति से प्रसन्न होकर धरणेन्द्रने अपना कृत्रिम वेष छोड़ दिया और प्रकृति वेष में प्रकट होकर उसने नमि विनमिसे कहा-राजपुत्रो ! राज्य का विभाग करते समय भगवान ! वृषभेश्वर आप लोगोंका राज्य मुझे बतला गये हैं सो चलिये मैं चलकर आपका राज्य आपको दे दूं इस समय वे ध्यान में लीन है इनकेमुख से आपको कुछ भी उत्तर नहीं मिलेगा इत्यादि प्रकार से समझाकर वह धरणेन्द्र उन्हें विमानपर बैठाकर विजयार्ध पर्वत पर ले गया । पर्वत की अलौकिक शौभा देखकर दोनों राजपुत्र बहुत ही प्रसन्न हुये । उस पर्वत की दो श्रेणियां है एक दक्षिण श्रेणी और दूसरी उत्तर श्रेणि । इन दोनों श्रेणियोंपर सुन्दर सुन्दर नगरों की रचना है जिस में विद्याधर लोग रहा करते हैं । वहां पहुंचकर धरणेन्द्र कहा कि भगवान् आप लोगों को यही राज्य देना स्वीकार कर चुकेहैं सो आप यहां का राज्य प्राप्त कर देवराज की तरह अनेक भोगों को भोगो और इन विद्याधरों का पालन करो । ऐसा कहकर उसने दक्षिण श्रेणि केसाम्राज्य में नमिका और उत्तर श्रेणि केसाम्राज्य में विनमि का अभिषेक किया । उन्हें कई प्रकार की विद्यायें दीं तथा जनता से उनका परिचय कराया । नमि विनमि विद्याधरों का राज्य पाकर बहुत प्रसन्न हुये । धरणेन्द्र कर्तव्य पूरा कर अपने स्थानको- वापिस, चला गया ।

ध्यान करते करते जब छह माह व्यतीत हो गये तब वृषभदेव ने अपनी मुद्रा समाप्त कर आहार लेने का विचार किया । यद्यपि उनकेशरीर में जन्म से ही अतुल्य बल था वे आहार न भी करते तब भी उनकेशरी मे कुछ शिथिलता न आती तथापि मुनि मार्ग चलाने- का ख्याल करते हुये उन्होंने आहार करने का निश्चिय कर गावों मे विहार करना शुरू कर दिया । विहार करते समय वे चार हाथ जमीन देखकर चलते थे और किसीसे कुछ बोलते न थे । यह हम पहले लिख चुकेहैं कि उस समयकेलोग इत्यन्त भोले थे । आदिनाथ केपहले वहां कोई मुनि हुआ ही नहीं था इसलिये वे लोगमुनि मार्ग से सर्वथा अपरिचित थे । वे यह नहीं समझते थे कि मुनियों केलिये आहार कैसे दिया जाता है । महामुनि आदिनाथ किसी को कुछ बतलाते, न थे क्योंकि यह नियम है कि दीक्षा लेने केबाद जब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं

हो जाता तब तक तीर्थकर मौन होकर रहते हैं किसी से कुछ नहीं कहते । इसलिऐ जब वे आहरकेलिए नगरों में पहुंचते तब कोई लोग कहने लगते थे कि हे देव ! प्रसन्न होओ, कहिये कैसे आगमन हुआ ? कोई महामूल्य रत्न सामने रखकर ग्रहण करने की प्रार्थना करते थे, कोई हाथी घोड़ा आदि सवारियां समर्पण कर उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे, कोई सर्वाड्. सुन्दरी कन्यायें ले जाकर उन्हें स्वीकार करने का आग्रह करते थे । और कोई सोने की थालीयों मे उत्तमोउत्तम भोजन ले, जाकर ग्रहण करने की प्रार्थान करते थे । पर वे विधिपूर्वक न मिलने केकारण बिना आहार लिए ही नगरो से वापिस चले जाते थे । इस तरह जगह जगहघूमते हुए उन्हें एक माह और बित गया पर कही विधिपूर्वक उत्तम पवित्र आहार नहीं मिला । खेद केसाथ लिखना पड़ता है कि जिनकेगर्भमें आनेकेछह माह पहले इन्द्र किंकर की तरह हाथ जोड़कर आज्ञा की प्रतिक्षा करता रहा, सम्राट भरत जिनका पुत्र था, और जो स्वयं तीनों लोकों केअधिपति कहलाते, थे वे भी ना कुछ आहार केलिये निरन्तर छह माह तक एक-दो नहीं कई-नगरों में घूमते रहे, पर आहार न मिला । कितना विषम है कर्मोकां का उदय ?

इस तरह भगवान आदिनाष ने एक वर्ष तक कुछ भी नहीं खाया पिया था तो-भी उनकेचित्त व शरीर में किसी प्रकार की विकृति और शिथिलता नहीं दीख पड़ती थी । अब हम कुछ समय केलिये पाठकों का चित्त वहां ले जाते है चहांपर महामुनि केलिये अकस्मात् आहार प्राप्त होगा ।

जिस समय की यह बात है उस समय कुरू जांगल देश केहस्तिनापुर में एक सोमप्रभ राजा राज्य करते थे, वे बड़ें ही धर्मात्मा थे, उनकेछोटे भाई का नाम श्रेयांसकुमार था, यह श्रेयासकुमार भगवान् आदिनाथ केवज्रजंघ भवमें श्रीमती स्त्रीका जीव था जो क्रम क्रमसे आर्या, स्वयंप्रभ देव, केशव, अच्युत प्रतीन्द्र धनदेव आदि होकर सर्वार्थ सिध्दि में अहमिन्द्र हुआ था और वहांसे चयकर श्रेयांसकुमार हुआ था । एक दिन रात्रि केपिछले प्रहरमें श्रेयांसकुमार ने अत्यन्त ऊंचा मेरू पर्वत, शाखाओं में लटकते हुए भूषणों से सुन्दर कल्पवृक्ष, मूंगोकेसमान लाल लाल अयाल से शोभायमान सिंह, जिसकेसीगोंपर मिट्टी लगी हुई है ऐसा बैल, चमकते हुए सूर्य चन्द्रमा, लहराता हुआ समुद्र और अष्ट मंगल द्रव्योंको लिये हुए व्यन्तर देव स्वप्नमें देखे सवेरा होते ही उसने अपने पुरोहित से ऊपरे कहे हुए स्वप्नों का फल पूछा । पुरोहितने निमित्त ज्ञान से सोचकर कहा कि मेरुपर्वत केदेखनेसे उसकेसमान उन्नत कोई महापुरू ष अपने शुभागमन से-आपकेभवनको, अनुकृत करेगा और बाकी स्वप्न उन्हीं महापुरू षकेगुणोंकी उन्नति बतला रहे हैं ।

पुरोहित मुखसे स्वप्नों का फल सुनकर सोमप्रभ और श्रेयान्स दोनों भाई हर्ष केमारे, फूले न समाते थे । प्रत: कालकेसमय देखे गये स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं । पुरोहित के, इन वचनोने तो उन्हें और भी अधिक हर्षित बना दिया था । राज भवन में बैठे हुए दोनों भाई उन महापुरू ष की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इतने में महापुरू ष भगवान् आदिनाथ ईर्या समिति से विहार करते हुए हस्तिनापुर जा पहुंचे ।

जब वे राज भवन केपास आये तब सिध्दार्थ नामक व्दारपालने राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयासकुमार को उनकेआनेकी खबर दी ।